तृतीय अध्याय

हिन्दी का आँचलिक उपन्यास साहित्य

प्रास्ताविक -

१) आँचलिक उपन्यासों की परिभाषाएँ -

२) आँचलिकता के प्रकार

३) आँचलिक उपन्यास साहित्य का उद्‌भव एवं विकास

निष्कर्ष ।

तृतीय अध्याय

" हिन्दी का आँचलिक उपन्यास साहित्य "

प्रास्ताविक --

उपन्यास-साहित्य के इतिहास में आँचलिकता ने युगान्तकारी परिवर्तन किया और आँचलिक उपन्यासों को एक नवीन औपन्यासिक विधा के रूप में स्वीकार किया गया। हिन्दी उपन्यास के क्रमिक-विकास में आँचलिक उपन्यास का उद्‌भव और विकास महत्वपूर्ण घटना है। इस प्रवृत्ति-विशेषा के ग्रहण से न केवल उपन्यास के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया वरन उसकी शिल्पगत मान्यताएँ भी बदली। स्वातंत्र्योत्तर काल में उपन्यासों में आँचलिक उपन्यासों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। आँचलिक उपन्यास जहाँ एक ओर नवीनतम विधा के रूप में प्रतिष्ठित होता है, वहाँ बाकी सभी प्रकार के उपन्यासों से अलग अपनी सत्ता को स्थापित करता है। उपन्यास के सभी तत्वों को समाहित करते हुएँ आँचलिक उपन्यास की जो अलग विशेषाताएँ है, वे ही उसके महत्व को स्वतंत्र व्यक्तित्व देती है। आँचलिक शब्द विशेषाण है और वह उपन्यास शब्द के साथ जुड़कर उसे एक विशिष्ट संदर्भ में परिभाषित करता है।

१) आँचलिक उपन्यासों की परिभाषाएँ --

आँचलिक उपन्यासों की परिभाषाओं के कारण आँचलिक उपन्यासों के स्वरूप पर भी प्रकाश डाला जाता है। अत: आँचलिक उपन्यासों के स्वरूप पर गहराई के साथ सोचने के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध में आँचलिक उपन्यासों की परिभाषाएँ दी जा रही है --

१) हिन्दी साहित्य कोश (भाग - एक) -

आँचलिक उपन्यास को प्रादेशिक उपन्यास का स्थानापन्न मानकर उसने आँचलिक उपन्यास की परिभाषा निम्नप्रकार से दी है -- " कुछ उपन्यासों में

किसी प्रदेश विशेषा का यथा-तथ्य और बिम्बात्मक चित्रण प्रधानता प्राप्त कर लेता है तो उन्हें प्रादेशिक या आँचलिक उपन्यास कहा जाता है।" [१]

२) डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत -

डॉ. गोविंद त्रिगुणायत का मत है कि" जिन उपन्यासों में स्थान विशेषा के सम्पूर्ण वातावरण का सांग-संश्लिष्ट और निष्कपट रूप से स्थानीय विशेषाताओं के साथ चित्र प्रस्तुत किया जाए, उन्हें आँचलिक उपन्यास कहेंगे।" [२]

३) श्री प्रकाश वाजपेयी --

" एक सीमित अँचल या क्षेत्र सर्वांगीण जीवन को वस्तून्मुखी दृष्टि से प्रस्तुत करने के उपक्रम"[3] को आँचलिक उपन्यास की उपयुक्त परिभाषा कहते है।

४) डॉ. लक्ष्मीकान्त सिन्हा --

`डॉ. लक्ष्मीकान्त सिन्हा आँचलिक उपन्यास को` परिचय की घनिष्टता का गद्य-प्रबन्ध ` कहते हैं। उनका विश्वास है कि" आँचलिक उपण्यास में सीमा, देश की है। उसका सांस्कृतिक पक्ष एक विशिष्ट भूमि-खण्ड का होता है, लेकिन संस्कारों में, भाव और भावनाओं में यह कण में ब्रह्माण्ड को दिखाना चाहता है। वे उसे सभ्यता का देहातों की ओर प्रत्यावर्तन ` भी कहते है।" [४]

५) डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त --

इनके मतानुसार" आँचलिक उपन्यासों में किसी अँचल या प्रदेश-विशेषा के ग्रामीण वातावरण एवं लोक-संस्कृति का चित्रण किया जाता है।" [५]

---

१ हिन्दी-साहित्य-कोश - (भाग-१) पृ.१५६।

२ डॉ. गोविंद त्रिगुणायत - शास्त्रीय समीक्षा के सिध्दान्त(द्वितीय भाग) पृ.४३३।

३ श्री प्रकाश वाजपेयी - हिन्दी के आँचलिक उपन्यास - पृ.६।

४ डॉ. लक्ष्मीकान्त सिन्हा - हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास-पृ.२९५।

५ डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त - हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - पृ.९३५।

विभिन्न विद्वानों ने आँचलिक उपन्यासों की परिभाषाएँ की है। हमारे मतानुसार आँचलिक उपन्यास की परिभाषा इसप्रकार हो सकती है -- ` किसी विशिष्ट भू-भाग ,या प्रदेश-विशेषा को लेकर लिखा हुआ साहित्य याने आँचलिक उपन्यास है। उसमें उसी प्रदेश का सर्वांग चित्रण रहता है। `

इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि ` अँचल ` एक सीमित क्षेत्र या जनपद है। इस जनपद का लोक-जीवन ,संस्कृति,जीवन-संकेत,रूढियाँ , सामुहिक जीवन,वहाँ की धार्मिक,सामाजिक स्थितियाँ आदि का चित्रण मिलता है।

२) आँचलिकता के प्रकार --

भारत की भौगोलिक और प्राकृतिक विभिन्नता के कारण आँचलिकता के कई भेद किए जा सकते है : जैसे-मैदानी इलाकों,पर्वतीय उपत्यकाओं,मरुस्थलीय भू-भागों,औद्योगिक महानगरों,नगरों,महानगरों के निकटवर्ती कस्बों,में बसी हुई बस्तियाँ, मुहल्लों, विशेषा टोलियाँ,मजदूरों की बस्तियाँ, महानगरीय उद्योग के लिए कच्चा माल,मछली,शंख, कपास आदि का उत्पादन करनेवाली निम्न - जातियाँ, अवैध धन्दो में लिप्त होकर आजिविका करनेवाली जातियों की बस्तियाँ भी आँचलिकता की कोटी में आ सकती है। इससे स्पष्ट होता है कि उपन्यास में जिस ` अँचल ` या भू-भाग का चित्रण आता है उसी के अनुसार आँचलिकता के प्रकार बनाएँ जाते है। अत: आँचलिकता के प्रकार निम्नप्रकार से --

१) ग्रामांचल --

इस प्रकार के उपन्यास के अन्तर्गत ग्रामीण जन-जीवन का यथार्थ चित्रण किया जाता है। हिन्दी साहित्य में ग्रामीण माहौल एवं परिवेश को लेकर बहुतांश उपन्यास लिखे गए। ` बचलनमा ` (१९५२),` मैला आँचल ` (१९५४), ` दु:खमोचना ` (१९५६),` कब तक पुकारूँ ` (१९५७) ; परती-परिकथा `, (१९५७ ),` सत्ती मैया का चौरा ` ( १९५९ ) ,` पानी के प्राचीर ` (१९६१),

आदि उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश का यथार्थ चित्रण किया गया है। प्रेमचंद जी का `गोदान` बहुत बड़ा आँचलिक उपन्यास सिध्द हो सकता है।

हरिऔंधजी के `ठेठ हिन्दी का ठाठ` (१८९९) में अंजमगढ़ क्षेत्र का चित्रण, भुवनेश्वर मिश्र के `बलवंत भूमिहार` (१९०१) में मुजफ्फरपुर के ग्रामांचल का, राही मासूम रजा के `आधा गाँव` (१९६६) में गंगोली गाँव की कथा-व्यथा का चित्रण, शिवप्रतापसिंह के `अलग-अलग वैतरणी` (१९६७) में वाराणसी क्षेत्र के ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। इन सभी उपन्यासों में ग्रामीण जीवन, ग्राम संस्कृति के यथार्थ पहलू चित्रांकित किए गए है।

२) नागर-आँचल --

नागर का अर्थ नगर का चित्रण। `कुछ विद्वान नागरी वातावरण में आँचलिकता की निर्मिती एवं अस्तित्व को नहीं मानते, यह तर्कसंगत एवं संयुक्तिक नहीं है।`[१] नागरजी के `बूँद और समुद्र` में लखनौ के चौक का प्रभावी वर्णन, रांगेय राघव के `काका` में मथुरा का जन-जीवन, `बहती गंगा` में काशी का जन-जीवन चित्रित किया है।

३) नदी-आँचल -

जिस उपन्यास की कथावस्तु नदी के किनारों के साथ विकसित, नदी के मोड के साथ मोड लेती है, वही उपन्यास नदी आँचल है। समाज तथा जन-जीवन के साथ प्रकृति का चित्रण रहता है, `जैसा` अधखिला फूल` में सरजू नदी का चित्रण` सरजू नदी अठखेलियाँ करती बह रही है। सुरज का रंग अपनी धाराओं में लपटती बहती है। सरजू नदी कल-कल बह रही है। बस नगर गाँव के ऊपर सरजू नदी .... उस पार चाँदपुर गाँव था। ... सारा गाँव सरजू नदी पर खड़ा रहकर यह सब लीला देख रहा था।`[२]

---

१ डॉ.ह.के.कड़वे - हिन्दी उपन्यासों में आँचलिकता की प्रवृत्ति-पृ.६६।

२ हरिऔधजी - अधखिला फूल - पृ.१३३।

देवेन्द्र सत्यार्थी का `ब्रह्मपुत्र` (१९५६) में ब्रह्मपुत्र नदी के परिवेश में स्थित जन-जीवन का चित्रण, श्री रघुवरदयालसिंह के `त्रियुगा` (१९६७) में तिरहुत जिले के `त्रियुगा` नदी का चित्रण, मधुकर गंगाधर के `सुबह होने तक` (१९६९) में "कोसी" नदी के बाढ के सत्यानाशी चित्रण है, जिससे नदी आँचलिकता फब गई है।

४) सागर अँचल --

सागर अँचल पर कम उपन्यास लिखे हैं। श्री उदयशंकर भट्ट के "सागर लहरें और मनुष्य" (१९५५) में बम्बई को वरसोवा नामक किनारे के कोली लोक - जीवन का चित्रण किया है।

५) पर्वत अँचल --

पहाडी भू-भाग में जीवन व्यतीत करनेवाली जन-जातियों, जीव-जंतु, पशु-पंछी आदि का चित्रण करनेवाले उपन्यास पर्वतांचलिक हैं। "श्यामा स्वप्न" में ठाकुर जगमोहन सिंह ने वर्णन किया है " ऐसे दण्डकारण्य के प्रदेश में भगवती चित्रोत्पाली झाडी और मनोहर पहाडी के बीच बहती है, कंकगध्द पर्वत से निकल अनेक दुर्गम विषाय और असमभूमि के उपर से बहती है।" १

१८८६ में देवकीनंदन खत्री के `चन्द्रकान्ता` में नौगढ और विजयगढ पहाडी विभाग का चित्रण, लज्जाराम शर्मा के "आदर्श दम्पत्ति" में अरवली पहाड का चित्रण आया है। पर्वत अँचल के बहुत से उपन्यास दिखाई देते हैं।

६) विशिष्ठ स्थान अँचल --

उदयशंकर भट्ट के `लोक-परलोक` (१९५८) में धार्मिक क्षेत्र "पद्मपुरी" का चित्रण, रेणुजी के "दीर्घतपा" (१९६३) में वीमेन्स हेास्टल का, नागार्जुन के "उग्रतारा" (१९६३) में जेल का, शैलेश मटियानी के "बोरीवली से बोरीबंदर" में महानगरीय जीवन की समस्याएँ आदि का चित्रण विशिष्ट अँचल

---

१ डॉ. इन्दिरा जोशी - हिन्दी आँचलिक उपन्यास : उद्भव और विकास - पृ. १८।

की दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

इस प्रकार कई विशिष्ठ स्थान, उत्सव, मठ, बस्तियाँ, रेल स्टेशन आदि कई स्थान विशेषों पर आँचलिक उपन्यास लिखे जाने लगे, जगदंबप्रसाद दीक्षित का "मुरदाघर" (१९७४) में महानगरीय झोपडियों का चित्रण है, जो विशिष्ठ स्थान अँचल पर लिखा गया है ।

७) जन-जातीय अँचल -

हिन्दी के जन जातिम मूलक आँचलिक उपन्यासों में भारतीय जन-जातियों की प्राक्स्वतंत्रता एवं स्वातंत्र्योत्तरकालीन राजनीतिक व्यवस्था का चित्रण पाया जाता है । प्राक्स्वतंत्रता काल में भारतीय जनजातीय समाज की राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण करनेवाली प्रमुखत: दो संस्थाएँ थी -- एक जातिगत पंचायत और दूसरी सरकार । जातिगत पंचायतें जातिसंबंधी पारस्परिक झगडे आदि तय कर लेती थी और सरकार के नाम पर सरकारी व्यवस्था को सुरक्षा प्रदान करनेवाली पुलिस जनजातीय समाज का शोषाण करती थी । हिन्दी के जन जातिमूलक आँचलिक उपन्यास साहित्य में जातिगत पंचायत एवं प्रशासन तंत्र की संरक्षक पुलिस, दोनों की गतिविधियों का चित्रण मिलता है ।

इसमें साहित्य क्षेत्र से सुदूर एक विशिष्ट भू-भाग में बसी विशिष्ट जन - जाति का यथार्थ चित्रण मिलता है । उनका समूह जीवन, उनकी आर्थिकता, उनके व्यवसाय का स्वरूप, खान-पान, तिज-त्यौहार का चित्रण इसमें होता है । देवेन्द्र सत्यार्थी के "रथ के पहिए" (१९५५) में गोंड जाति का, रांगेय राघव के "कब तक पुकारूँ" (१९५७) में करनट जातिका, शानी के "शालवनों का द्वीप" (१९६७) में आदिवासी माडिया गोंड का, आनंद प्रकाश जैन के "आठवीं पांवर" (१९६९) में गोसाइयों का जीवन चित्रण देखने को मिलता है ।

उपर्युक्त बातों से ऐसा लगता है कि हिन्दी के आँचलिक उपन्यासकारों ने जनजातीय समाज के इन संदर्भों को पूर्ण रूपेन रूपायित करने का प्रयास किया है

परन्तु यहाँ यह अविस्मरणीय है, कि हिन्दी में बहुत ही अल्पसंख्या में जन - जातियों पर उपन्यास साहित्य लिखा है। उत्तर प्रदेश की मोक्सा, मुईया, बोरा, गोंड, कोल, थारु, मध्यभारत की कोर्क, सहरिया, मारिया, मवरा, भील आदि अनेक जनजातियाँ है जिनपर आँचलिक उपन्यासों का निर्माण कर हिन्दी उपन्यास साहित्य को समृध्द किया जा सकता है।

" डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने दो ही (भाषा की दृष्टि से) भेद माने है।

१) जनपदीय भाषा में लिखे गए उपन्यास - जैसे " बहती गंगा " में काशी की विशुध्द बोली का प्रयोग है।

२) जो हिन्दी में लिखे गए तथा जिनमें कुछ स्थानीय प्रयोग किए गए है जैसे -- " परती-परिकथा "। " १

अत: उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है आँचलिकता के प्रकार के लिए स्थान, जाति, प्रवृत्ति का आधार लिया गया है, मगर साहित्य का यह एक अंग है। यथार्थ आँचलिक साहित्य वह है, जो भौगोलिकता के साथ सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थिति का चित्रण करें। अध्ययन की सुविधा के लिए उपर्युक्त प्रकार किए गएँ है। हर एक उपन्यास में उनमें से एक-से अधिक अंगों का चित्रण होता रहता है। यहाँ ग्रामांचल, नदी-अँचल, नागर अँचल, सागर अँचल, झोपडपट्टी अँचल, विशिष्ट स्थान-अँचल, जनजातीय-अँचल, पहाडी-अँचल, आदि आँचलिकता के प्रकार स्पष्ट हो पाएँ है।

३) आँचलिक उपन्यास साहित्य का उद्‌भव एवं विकास --

हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास यात्रा की तीन प्रमुख अवस्थाएँ है, जिन्हें १) प्रेमचंदपूर्व उपन्यास युग, २) प्रेमचंद युग और ३) प्रेमचंदोत्तर उपन्यास

---

१ डॉ. ह.के. कडवे - हिन्दी उपन्यासों में आँचलिकता की प्रवृत्ति -पृ. ६७-६८।

युग की संज्ञा दी जा सकती है। हिन्दी उपन्यास साहित्य के इस रूप में काल-विभाजन का एक अत्यंत स्पष्ट आधार है। हिन्दी उपन्यास की वास्तविक शक्ति और स्वरूप को उसके सही रूप में सर्व प्रथम प्रेमचंद ने ही पहँचानने का सफल प्रयास किया। उनके पूर्वी उपन्यासों में विषय और उद्देश्य की दृष्टि से कुछ-न-कुछ विविधता होने पर भी वे एक दूसरे-से बहुत भिन्न नहीं है। प्रेमचंद के अविर्भाव के पूर्व प्राय: सभी उपन्यास मनोरंजन-प्रधान-घटनात्मक स्वरूप लिए थे। प्रेमचंद ने उपन्यास के इस रूप को एक नया मोड दिया। उन्होंने उपन्यास के क्षेत्र को काफी हद तक प्रभावित किया।

यद्यपि १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हिन्दी उपन्यास का जन्म हुआ था और पश्चिमी उपन्यासों का अध्ययन भी प्रारंभ हो गया था, फिर भी हिन्दी का उपन्यासकार पश्चिमी उपन्यास की उस मुल छवि से पूर्णत: परिचित नहीं हो सका था, जिसके प्रभाव-स्वरूप हिन्दी उपन्यास साहित्य का जन्म हुआ था। पूर्ववर्ति उपन्यासकार भारत में प्रचलित कथा-कहानियों के प्रभाव से भी नहीं उभर सके थे और वे उपन्यास को मनोरंजन का साधन मान बैठे थे। प्रेमचंद ने पहले-पहल उपन्यास के वास्तविक अर्थ को पहँचान लिया। प्रेमचंद की इस पकड का प्रभाव हिन्दी उपन्यासों में दूर तक फैलता रहा। इसलिए यह कहाँ गया है कि उपन्यास का वास्तविक स्वरूप प्रेमचंद में दिखाई पडता है। इस रूप में काल-विभाजन यह स्पष्ट करता है कि प्रेमचंद ने ही हिन्दी उपन्यास को कल्पना से यथार्थ की ओर मोडकर उसे जीवन के अधिक निकट लाने का प्रयास किया है।

'हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण' का लेखक लिखता है कि प्रेमचंद हिन्दी उपन्यास की पथ-यात्रा के सर्वाधिक महत्वपूर्ण सीमा चिन्ह है - वे हिन्दी के प्रतिनिधि उपन्यासकार है, जो मानो अपने पूर्ववर्ती और परवर्ती युगों को अपनी विशाल भुजाओं में समेटे हुएँ है। वे पूर्ववर्ती और परवर्ती युग के बीच की अनिवार्य कडी है। उपन्यास की विभिन्न कालक्रमानुगत प्रवृत्तियों की विशिष्टता एवं

सीमाएँ निर्धारित करने के लिए उसके सम्पूर्ण जीवनकाल का ` पूर्वप्रेमचंद युग`, ` प्रेमचंद युग` और `` प्रेमचंदोत्तर युग से अधिक संगत एवं स्पष्ट विभाजन नहीं हो सकता ।

क) प्रेमचंद पूर्व उपन्यास - साहित्य में आँचलिकता --

हिन्दी उपन्यास का उद्भव १९वींशताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ । उसमें मानव जीवन का चित्रण और मानव मूल्यों की स्थापना जिस रूप में हुई उससे वह प्राचीन कथा-कहानियों से भिन्न हो गया । उपन्यास का जन्म आधुनिक काल के यथार्थवादी परिवेश में हुआ । वह निस्संदेह पूँजीवादी सभ्यता की देन है । पूँजीवादी सभ्यता के विकास से समाज में जिस ` मध्यमवर्ग` का जन्म हुआ, वह अपने आपमें एक विशिष्ट ऐतिहासिक घटना थी । उपन्यास साहित्य का सारा इतिहास इस नएँ जन्में वर्ग से जुड़ा है । भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ आर्थिक ,राजनैतिक और सामाजिक जीवन में भारी परिवर्तन हुए मध्य - कालीन सामन्तवाद के क्षय के फलस्वरूप आधुनिक पूँजीवाद का जन्म और मध्यवर्ग का उदय हुआ । यह मध्यवर्ग शासन पर आश्रित नहीं था, वह समस्त देश का प्रतिनिधि था । सारे देश में विभिन्न रूपों में फैला था कहीं स्वतंत्र पेशेवर वकील,साहित्यकार,पत्रकार,सेठ सौदागर के रूप में तो कहीं सरकारी और गैर-सरकारी वेतनभोगी ` क्लास` के रूप में जैसे कि रानी,अधिकारी,शिक्षक,पटवारी, मुनीम आदि । और उपन्यास लेखक शिक्षित मध्यवर्ग के थे, वे उपन्यास को एक व्यापक भूमि पर लाना चाहते थे । वे सभी कुछ सामान्य प्रवृत्तियों से युक्त थे - सुसंस्कृत,जागृत,उदार,गतिशील । उनमें जाति,भाषा और प्रान्त का भेद बहुत क्षीण हो गया था । वे जाति न रहकर वर्ग बन गए थे और सामाजिक,धार्मिक, राजनीतिक तथा राजनैतिक नेतृत्व की बागडोर थामे थे । वे पूर्व-पश्चिम और नवीन-प्राचीन में समन्वय चाहते थे । बदली हुई परिस्थिति का पूरा दबाव उनकी चेतना पर था । नएँ परिवर्तन ने जिस राष्ट्रीय-चेतना को जन्म दिया था, उसका प्रभाव उसके मन पर बराबर था । इस वर्ग को लेखकों ने साहित्यिक चेतना

का सम्बन्ध नागर जीवनमें नवोन्मेषित धारणाओं और परिस्थितियों से जोड दिया था। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि अंग्रेजो शासन की स्थापना परिणाम-स्वरूप भारतीय जीवन में परिवर्तन आया, उसमें ही उपन्यास का विकास हुआ और यह विधा भी अंग्रेजी साहित्य की देन है।

इस युग में देश की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों ने उपन्यास के उद्भव और विकास के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण कर दिया था। जिस चातुर्य से अंग्रेजोंने देश की विशृंखलित परिस्थितियों का लाभ उठाकर अपना शासन स्थापित किया। अंग्रेजो शासन के प्रसार से अंग्रेजी शिक्षा, रेल, प्रेस और अन्य अनेक वैज्ञानिक अविष्कारों ने भारतीय जीवन का चतुर्मुख संस्कार किया, यद्यपि यह संस्कार उनका उद्देश्य नहीं था। जो परिवर्तन आ रहा था, वह कई स्तरों पर और बडे पैमाने पर था। इस बदलते हुऐ परिवेश, पध्दति एवं दृष्टिकोण का केन्द्र था मध्यवर्ग। इसका विश्लेषाण देते हुए डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते है --" इस मध्यवर्ग ने युरोपीय ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की थी और वह बौध्दिक पिपासा और प्रगति की आकांक्षा से ओत-प्रोत था और उसी पर समाज के नव-निर्माण का उत्तरदायित्व था, क्योंकि उच्च-वर्ग स्थान-च्युत, आर्थिक विषामता से पीडित और नवीन प्रभावों से दूर था और बहुसंख्यक निम्न-वर्ग अशिक्षित तथा अंधकार में लिप्त, फलत: कुछ कर सकने में असमर्थ था। नव-निर्माण भी द्विपक्षीय था। एक ओर तो कुरीतियों, अंध-परम्पराओं और चारित्रिक हीनताओं से रहित स्वस्थ एवं कल्याणप्रद और देशोपकारक भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं की स्थापना, दूसरी ओर पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के अभारतीय घातक प्रभावों से अलग रहते हुऐ वहाँ की अच्छी-अच्छी बाते ग्रहण करना। अधोगति के गर्त में गिरे हुऐ देश का इस दृष्टि से उध्दार करना वास्तव में गंगा को ब्रह्मलोक से भूतल पर लाना था और महान् कार्य को सम्पन्न करने का गुरुत्तर भार हिन्दी उपन्यास साहित्य ने अपने उपर लिया।"[१]

---

१ डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - हिन्दी उपन्यास - उपलब्धियाँ - पृ.१०।

मध्यवर्गीय लेखकों ने साहित्य का गठबन्धन समाज के साथ कर दिया। हिन्दी उपन्यास एक ऐसे साहित्य-रूप में विकसित हुआ जिसमें नागर सभ्यता की विविधता और जटिलता कीयथार्थ और पूर्ण अभिव्यक्ति हुई। नागर जीवन में आनेवाले परिवर्तनों और विशेषताओं का उपन्यास पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस परम्परा के अनेक उपन्यासकारों ने नगर को घटना-स्थल और वहाँ के वैयक्तिक, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन को वर्ण्य-विषय बनाया। उन्होंने निर्भीक होकर नागर जीवन की नैतिकता पर प्रकाश डाला। इसके सम्बन्ध डॉ. बदरीदास कहते है --` रईसों की अकर्मण्य विलासिता और वेश्याओं के छिछले प्रेम को लेकर उन्होंने अनेक पृष्ठ रंगे तथा वंचना और साहसिकता को यथार्थवादी कथाएँ सुनाई। प्रारंभिक उपन्यास नगर जीवन के दस्तावेज है।` [१]

इस प्रकार जिस सुधारवादी प्रवृत्ति का दर्शन इस काल के उपन्यासों में होता है, वही प्रवृत्ति उपन्यासों के नामकरण में भी परिलक्षित होती है, ` आदर्श दम्पति` ,(प.लज्जाराम शर्मा),` दो मित्र` (लोचनप्रसाद पाण्डेय), ` बामा-शिक्षक` (मुन्शी ईश्वरीप्रसाद और मुन्शी कल्याणराव),` सौ अजान एक सुजान` (पं.बालकृष्ण भट्ट),` भाग्यती` (पं.श्रध्दाराम फुल्लौरी) आदि।

इस काल के उपन्यासों का उद्देश्य था,भावपूर्ण रोमानी उपन्यासों द्वारा पाठकों का मनोरंजन करना। इसप्रकार भावुकता एवं रोमानी प्रेम की प्रवृत्ति के दर्शन इस काल के सामाजिक एवं ऐतिहासिक दोनों प्रकार के उपन्यासों में होते है। भावपूर्ण उपन्यासों का प्रतिनिधित्व` श्यामा स्वप्न` (ठा.जगमोहन सिंह), ` सौन्दर्योपासक` (ब्रजनन्दन सहाय) एवं` राजेन्द्र मालती` (श्री ब्रजनंदन सहाय) करते है। इनके प्रणय की कहानी रीतिकालीन ढंग से कही गई है तथा उसी परिपाटी के सभी उपकरणों - नायिका - भेद, सखी,दूती,प्रेम-पत्र,अभिसार, सुरति,समागम आदि कासमावेश भी कर दिया गया है।

इस प्रकार के सामाजिक उपन्यासों में भी प्रेम संबंधी उपन्यासों की संख्या सबसे अधिक है जिनमें रीतिकालीन नायिका-भेदवाले प्रेम के साथ उर्दुवाली शोखी,

१ डॉ.बदरीदास - हिन्दी उपन्यास-पृष्ठभूमि और परम्परा- पृ.१०५।

शरारत और चुहुल भी दिखाई देती है। इसप्रकार के उपन्यासों में `अंगूठी का नगीना`, `चंद्रावली`, `लीलावती`, (किशोरीलाल गोस्वामी), `प्रणयी-माधव` (मोरेश्वर पोतदार), `शीला` एवं `कमोदकंदला` (हरिप्रसाद जिंदल) प्रमुख है।

इन उपन्यासों को जानने की प्रासंगिकता यह है कि इनमें आँचलिकता के बीज ढूँढने का प्रयास किया गया है। इसी सिलसिले में जो बात कही गई है, वह इस मान्यता के निकट नहीं बैठती - `कलाकार की कल्पना अनजाने ही कहीं-कहीं दृश्य-संयोजना करने लगती है जिससे कथा की नीरसता भंग हो जाती है -- फिर भी यह तो सत्य है ही कि वातावरण के अनेकानेक सुन्दर चित्र होने पर भी आँचलिक चित्रण की आवश्यकता की पूर्ति नहीं करते ... कभी-कभी कथानक की कड़ियों को जोड़ने के लिए भी उसका प्रयोग किया जाता है। किसी विशिष्ट अँचल के जीवन का चित्रण करने की दृष्टि से कहीं भी प्रकृति चित्रण और वातावरण की संयोजना नहीं है। निष्कर्ष यही निकलता है कि प्रेमचंद-पूर्व-उपन्यास आँचलिकता के तत्वों से रहित है।`[१] इस युग में तीन प्रकार के उपन्यास पाएँ जाते है। जो निम्नानुसार है -- १) मनोरंजन प्रधान उपन्यास २) उपदेशप्रधान सामाजिक उपन्यास और ३) ऐतिहासिक उपन्यास आदि।

ब) प्रेमचंद युग के उपन्यास - साहित्य में आँचलिकता --

प्रेमचंद की रचनाएँ ही उनके कृतित्व एवं व्यक्तित्व की परिचायक है। व्यक्तिगत रूप से देखा जाए तो `सेवासदन` से `गोदान` तक की यात्रा एक बहुत बड़े कड़वे यथार्थ को स्वीकार करने की है। यह यात्रा `कफन` के पास से गुजरती है। एक प्रकार से यह `आदर्श` से `यथार्थ` तक की यात्रा है। यहाँ प्रेमचंद एक हवाई दुनिया से जमीन पर उतरे है। यात्रा के अन्त में जहाँ पहुँचे हैं वह उनकी ऐसी उपलब्धि है जो एक ओर तो उनके विकास-क्रम को अभिसूचित करती है उनकी

---

१ डॉ.आदर्श सक्सेना - हिन्दी के आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि - पृ.७३।

लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण दिखाई देती है और दूसरी ओर हिन्दी - उपन्यास को एक ऐसे आयाम पर लाकर खड़ा कर देती है। जहाँ से सारा हिन्दी उपन्यास साहित्य साफ तौर पर दो भागों में विभाजित दिखाई देता है। एक उनके पूर्व का और एक उनके बाद का। प्रेमचंद उपन्यास साहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है। उन्हें देखने के लिए प्रासंगिक मानसिकता से बचकर चलना चाहिए। प्रेमचंद इतने प्रासंगिक है या अप्रासंगिक है यह देखना गलत होगा। अपने रचना-काल में कोई भी कलाकार जिन बहुत-से सुत्रों और आयामों में जीता है या संगठित होता है, उसको उन्हीं के संदर्भ में जानना अधिक युक्ति-संगत है।

प्रेमचंद हिन्दुस्थान की आजादी के दिनों के बड़े साहित्यकार थे। वे बड़े इसलिए थे कि उनके समकालीन किसी अन्य लेखक की रचनाओं में वह गुणात्मक और मात्रात्मकता नहीं थी और इसलिए प्रेमचंद बड़े साहित्यकार थे। प्रेमचंद का महत्व इस बात में है कि उन्होंने अपने समय के समाज को बहुत दूर तक, बहुत गहराई तक भी जानने का प्रयत्न किया था। छोटे-से-छोटे प्रसंग उनकी निगाह में थे। अपने समाज की यह पहँचान और यथार्थ की पकड़ बहुत कम लोगों में होती है। उन्होंने जहाँ इस दृष्टि को अपने रचना-कौशल का अनिवार्य अंग बनाया है, वहाँ के `निर्मला` या `प्रेमाश्रम` के प्रचारक, सुधारक या उपदेशक नहीं लगते, वरन् एक संघर्षशील व्यक्ति की तरह उपस्थित होते है। आदर्श के प्रति प्रेमचंद का मोह `रंगभूमि` के साथ ही भंग हो गया था। प्रेमचंद ने सबसे पहले रंगभूमि में यह अनुभव किया था कि सारा का सारा आदर्शवादी सत्य-दर्शन किसी-न-किसी बिन्दु पर दृष्टिहीन होने को बाध्य है।

यहीं से प्रेमचंद ने अपनी संवेदना का खण्डन करना प्रारंभ किया। `गोदान` और `मंगलसुत्र` तक आते-आते इनकी संवेदना इतनी बदल चुकी थी कि उनकी सृजन-प्रक्रिया में भारी अन्तर आ गया था। `इन कृतियों के अन्त में विराम-चिन्ह की जगह प्रश्न-चिन्ह लगा हुआ है, इनमें समाधान का संतोष न होकर समस्या का असंतोष है, आधुनिकता की चुनौती का साक्षात्कार है। प्रेमचंद

हल्कू के खेत को` पूस की रात` में नील गाय से चरा हुआ पाते है, बदमस्त धीसू और माधव को` कफन` में शराब के नशे में गिरा हुआ पाते है, किसान के रूप में` होरी` को ` गोदान` के अन्त में धराशायी पाते है।.... यह उपन्यास केवल होरी का गोदान नहीं है,प्रेमचंद की आस्था का भी गोदान है, सदनों , निकेतनों,आश्रमों में लेखक की आस्था का गोदान है। प्रेमचंद का महत्व बताते हुए डॉ.रामदरश मिश्र कहते है --" प्रेमचंद के आगमन से हिन्दी उपन्यास में नया युग प्रारंभ होता है, बल्कि यो कहा जाए कि वास्तविक अर्थो में उपन्यास युग आरंभ होता है। उपन्यास साहित्य की सृष्टि जिस उद्देश्य को लेकर हुई थी उस उद्देश्य की पूर्ति प्रेमचंद के पूर्व के उपन्यासोंद्वारा नहीं हुई। पश्चिम में उपन्यासों का जो विकास हो गया था उससे भी प्रेमचंद के पहले के उपन्यासकार लाभान्वित नहीं हो सके थे। प्रेमचंदने पहली बार उपन्यास के मौलिक क्षेत्र, स्वरूप और उद्देश्य को पहँचाना। पहँचाना ही नहीं उसे भव्य समृध्दि प्रदान की, काफी ऊँचाई तक ले गए।" [१]

इस युग में जो उपन्यास मिलते है उन्हें मुख्यत: चार भागों में बाटा जा सकता है --

१) यथार्थवादी उपन्यास २) स्वच्छन्दतावादी उपन्यास २) मनोवैज्ञानिक उपन्यास और ४) ऐतिहासिक उपन्यास।

इनमें यथार्थवादी और ऐतिहासिक उपन्यासों में आँचलिकता के गुणों के लिए काफी स्थान था और एक सीमा तक उनमें आँचलिक विवरण भी आए है। इस कोटि के उपन्यासकारों में प्रेमचंद और वृंदावनलाल वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। यह बात सही है कि इन दोनों उपन्यासकारों ने जिन पृष्ठभूमियों को आधार बनाकर उपन्यास लिखे है उनमें कथानक,चरित्र-चित्रण,वार्तालाप एवं वातावरण में उन तत्वों का समावेश हुआ है, जिनमें आँचलिकता या तो अंशत: है या उनमें

---

१ डॉ.रामदरश मिश्र - हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा - पृ. ३३।

आँचलिकता का आरोप करने का प्रयत्न हुआ है। ये आँचलिक विवरण उद्देश्य की भिन्नता के कारण आँचलिकता की आधुनिक धारणा को साकार नहीं करते, बल्कि केवल सहायक उपादान के रूप में प्रस्तुत हुए है।

प्रेमचंद वह प्रभावशाली उपन्यासकार है, जिन्होंने इस युग के उपन्यास साहित्य को दूर तक अनुप्राणित किया है, उन्होंने विस्तृत फलक पर किसान और मध्यवर्ग के जीवन बड़ी ईमानदारी और तत्परता से चित्रण किया है।[१] इन कलात्मक तस्वीरों में प्रेमचंद की वस्तु चेतना का विकास वैचारिक उन्मेष की उपलब्धि के रूप में देखा जाता है। सम्भवत: इसीलिए प्रेमचंद के उपन्यासों में आँचलिकता का सशक्त भ्रम मिलता है क्योंकि इसमें शहर और ग्राम कथा बनकर नहीं आए है। प्रेमचंद की दृष्टि गाँवों और किसानों के सामाजिक जीवन के विविध चित्रोंको उतारने की ओर थी। यहाँ किसान की आर्थिक, सामाजिक दशा उसके शोषाक तत्व, कारिन्दे, जमींदार, पटवारी, अफसर, सिपाही, दारोगा, कचहरी, वकील, सुदखोर, उनकी मनोवृत्तियाँ और कार्य प्रणाली सब है।

इस युग के दूसरे उपन्यासकार है जयशंकर प्रसाद, जिनका `तितली` उपन्यास ग्रामीण पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। इस उपन्यास में उन्होंने जमींदारों के कर्मचारियों की कूट नीति एवं धाँधली, ग्रामीण जनता की सरलता तथा घोर स्वार्थवृत्ति, गाँव की राजनीति, गाँव के त्यौहार-उत्सव, सम्मिलित परिवारों की दुर्बलता आदि की झलक दिखाने का प्रयास किया है। `तितली` में ग्रामजीवन का चित्रण प्रेमचंद की तरह प्रसाद की मानसिकता का द्योतक नहीं बन पाया है। उन्होंने उसमें ग्रामीण और नगर-संस्कृतियों के सामंजस्य तथा पश्चिम के भौतिकवाद और पूर्व के अध्यात्मवाद के समन्वय में समष्टि कल्याण को देखने का प्रयत्न किया है। `तितली` में आँचलिक उपन्यास के तत्वों को खोजना व्यर्थ है। प्रसाद मानवतावादी कलाकार है और एक विराट दार्शनिक भावभूमि पर वे उसके संधान

---

१ श्री महेन्द्र चतुर्वेदी - हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण - पृ.४९।

का सफल प्रयास करते हुएँ दिखाई देते है ।

प्रेमचंद के बाद जिस उपन्यासकार के उपन्यासों में आँचलिकता को ढूँढने का प्रयास परिश्रमपूर्वक हुआ है वे है श्री वृन्दावनलाल वर्मा । वर्मा जी के उपन्यासों के प्राय: सभी कथानक ऐतिहासिक है । इन उपन्यासों की कथाभूमि बुन्देलखण्ड है । उन्होंने अपनी उपन्यासों की ऐतिहासिकता को सजीवता और प्रामाणिकता देने के लिए आँचलिक पीठिका ग्रहण की है । बुन्देलखण्ड के समाज का विस्तृत परिचय भी दिया है और बुन्देलखण्डी भाषा का प्रयोग कर स्थानीय रंग भी दिया है । बुन्देलखण्ड का आँचलिक परिवेश साकार करने का प्रयत्न भी मिलता है ।

उन्होंने बुन्देलखण्ड के अँचल का प्रयोग ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए किया है न कि भौगोलिक संस्कृति को रूपायित करने के लिए । ऐतिहासिक कथाकार का बल ऐतिहासिक घटनाओं को आधुनिक संदर्भों में प्रमाणित करने का अधिक रहता है । उनके उपन्यास ऐतिहासिक है,आँचलिक नहीं । `जनपदीय आन्दोलन` से सम्बन्ध होने के कारण भूखण्ड के प्रति वर्माजी का आग्रह स्वयं एक ऐतिहासिक घटना है ।

इन उपन्यासों में आँचलिकता का असंगत ग्रहण इस रूप में भले ही ढूँढा जा सकता है कि उनके पात्र पिछडे वर्ग या ग्रामीण समाज के है । ये पात्र जहाँ `टिपिकल` हो गए है, वहाँ वे अपने वर्ग और `अँचल` का प्रतिनिधित्व करते है । ऐसे पात्रों में होरी का नामोल्लेख किया जा चुका है । प्रेमचंद के दूसरे उपन्यासों में भी मनोहर (प्रेमाश्रम), सूरदास (रंगभूमि), अछूत गूदड (कर्मभूमि) आदि इसी प्रकार के पात्र है ।

इन उपन्यासों में परिवेश के चित्रण ने अपनी स्वाभाविकता और सशक्तता में आँचलिकता का आभास दिया है, किन्तु सच यही है कि ये चित्रण वातावरण की आवश्यकता की पूर्ति करते है, प्राकृतिक पृष्ठभूमि स्पष्ट करते है । इनमें कल्पनामिश्रित अलंकार शैली का प्रयोग उन्हें आँचलिक शैली के अधिक निकट

रख देता है, यों कहना उचित होगा कि शैलीगत प्रयोग में इस युग के उपन्यासों में कही कही आँचलिक उपन्यासों जैसे अत्यंत विस्तृत-विवरण मिलते है जो उनकी वर्णनात्मकता को आँचलिक उपन्यास कीवर्णनात्मकता के निकट रखते हैं। यदि इन उपन्यासों में समस्या और मनोविज्ञान का आग्रह प्रबल न होता तो इनसे आँचलिक उपन्यासों का श्रीगणेश समझा जाता।

इनकी भाषामें भी नवीनता दृष्टिगोचर होती है। इस पीढि के उपन्यासकारों का झुकाव जनभाषा की ओर हुआ। पात्रों के स्वभाव के अनुकूल भाषा का प्रयोग प्रेमचंद ने आरंभ कर दिया था। परिणामतः भाषामें स्वाभाविकता, प्रवाहपूर्णता एवं प्रभावात्मकता का समावेश हुआ। इसप्रयोग से शैली में भी प्रभावोत्पादकता आई। भाषा का यह प्रयोग आँचलिक उपन्यासों के भाषा के लिए आधारभूमि तैयार करने का काम अनजाने ही कर गया। प्रेमचंद और वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों में कुछ अच्छे भाषा-प्रयोग मिलते है, जिसमें क्षेत्रीयता का पुट स्वाभाविक बन पडा है।

ग) प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यास - साहित्य में आँचलिकता --

`गोदान` में अपनी परम्परा से हटकर प्रेमचंद हिन्दी-उपन्यास को नया मोड देते है, यद्यपि यह मोड इसलिए नितान्त नया नहीं लगता कि इसमें समष्टि मंगल या सामुहिक कल्याण की भावना बराबर मौजुद है। `आधुनिकता की प्रक्रिया से समझौते का प्रयास है। इनकी पारस्पारिक मैत्री के सम्बन्ध में एक नएँ कदम को उठाया तो गया है, परन्तु यह उठकर समाज सेवा में गिर जाता है। इस सम्बन्ध में विवाह के स्थान पर मेहता तथा मालती में मित्रता की स्थापना नए मानवीय सम्बन्ध को भी इंगित करती है जिसकी कल्पना प्रेमचंद विनय, सोफिया(रंगभूमि) में नहीं कर सके।`[१] इस तरह गोदान जहाँ अपनी पुरानी परम्परा से अलग

---

१ डॉ. इन्द्रनाथ मदान - आज का हिन्दी उपन्यास - पृ.१०।

होता है वहीं उस उपन्यास का उदय होता है, जिसमें आज का उपन्यास विकसित हुआ है। इस समय तक जैनेन्द्र `सुनीता` और `त्यागपत्र` लिख चुके थे जिसमें आधुनिकता की चुनौती को नारी कल्पना के रूप में स्वीकार किया गया है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास आदर्शोत्मुख यथार्थवाद या आदर्श तथा यथार्थ में सामंजस्य को भंग करने की आधुनिकता की प्रक्रिया है। यहाँ पहुँचकर हिन्दी उपन्यास ने लेखक को यथार्थ के सम्मुख आकर झेलने के लिए बाध्य कर दिया था।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास में दो प्रवृत्तियाँ मुख्य रूप से दिखाई देती है। एक सामाजिक यथार्थ और दूसरा मनोविश्लेषण। इस युग का उपन्यास न तो उस रूप में सामाजिक यथार्थ को ढूँढ पाया है और न ही उसमें वह वेधक मनोवैज्ञानिक उत्सुकता है, जो पाश्चात्य उपन्यासों में है। हिन्दी उपन्यास अभी विकास की उन मंजिलों में से नहीं गुजरा है, उन अनुभूतियों से सम्पन्न नहीं है, उन प्रयोगों से नहीं निकला है जिनसे पाश्चात्य या विदेशी उपन्यास गुजर चुका है।

`गोदान` में जिस सामाजिक यथार्थ का स्फुरण हो चुका था वही आगे चलकर अनेक रूपों में प्रस्फुटित हुआ। उनमें एक आँचलिक यथार्थ भी है। हालाँकि मनोवैज्ञानिक यथार्थ, ऐतिहासिक यथार्थ, सामाजिक यथार्थ की तुलना में उसका स्वर उतना प्रखर नहीं था।

प्रेमचंद के बाद के उपन्यासों में जो नई प्रवृत्तियाँ उभरी है उनका पूर्वाभास उनकी ही अंतिम रचनाओं में मिलने लगा था। यही से परवर्ती उपन्यासों की नई परम्परा का दर्शन होता है। सामाजिक यथार्थ को नई दृष्टि से देखने का अर्थ है, बदलते हुए परिवेश में अपने अनुभव स्तरों को बदलते हुए देखना। यह दृष्टि यथार्थ को ऐतिहासिकता से अलग भोगने के लिए प्रस्तुत करती है। `गोदान` में यह दृष्टि उभरती है और प्रेमचंद के पहले के उपन्यासों और उनके बाद के चिन्तन, वैचारिक दृष्टिकोण और रचना-प्रक्रिया के अन्तर को स्पष्ट करती है।

प्रेमचंद के बाद हिन्दी उपन्यास की धारा दो दिशाओं में बहती हुई दिखाई देती है, एक दिशा है आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टि जिसका सम्बन्ध

` फ्रायड ` के मनोविश्लेषणवाद से है । नवीन मनोविज्ञान से अनुप्राणित उपन्यासों ने मनोविश्लेषण शास्त्र के साथ प्रकृतिवाद, अस्तित्ववाद, प्रतीकवाद आदि द्वारा अन्वेषित सत्यों से भी साक्षात् किया । यह साक्षात्कार बाहरी दुनिया से निरपेक्ष होकर मानव-सत्यों की ओर जाने का प्रयास है । इस परिवर्तन का उपन्यास के गठन, कथा-विन्यास, पात्र-रचना, देशकाल आदि पर प्रभाव पडा और इनका स्वरूप प्रेमचंद के उपन्यासों या सामाजिक उपन्यासों से भिन्न दिखाई देता है ।

दूसरे प्रकार के उपन्यास सामाजिक यथार्थ के उपन्यास है । इन्हें प्रेमचंद के सामाजिक उपन्यास की धारा से पृथक करती है । प्रेमचंद का यथार्थ इस नएँ यथार्थवादी दृष्टिकोण से अलग है । इसमें आदर्शोन्मुखता नहीं जुडी है और यथार्थ को उसके ऐतिहासिक संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है । स्वातंत्र्योत्तर परिस्थितियों ने एक नई औपन्यासिक विधा को जन्म दिया, जिसे आँचलिक उपन्यास के नाम से पुकारा गया । आँचलिक उपन्यासों की जन-चेतना इन्हें प्रेमचंद से जोडती है किन्तु इसका स्वरुप और दृष्टि उनसे बहुत भिन्न है । ` नई कविता और नई कहानी में जिस प्रामाणिक अनुभव की अभिव्यक्ति हुई वही प्रकारान्तर में आँचलिक उपन्यासों में भी रूपायित हुआ । ` [१]

प्रेमचंद के बाद के ऐतिहासिक उपन्यासों में भी यथार्थवादी दृष्टि प्रमुख हुई । ` हरावती ` और ` गढकुण्डार ` में इस नई दृष्टि के संकेत सुत्र मिलते है, किन्तु उनके पूर्ण रूप की अवधारणा स्वतंत्रता के बाद के उपन्यासों में दिखाई देती है । इस युग के उपन्यासकारों ने इतिहास की चमत्कारिक घटनाओं को उनकी सम्पूर्ण मांसलता के साथ प्रस्तुत किया ।

इस बदले हुएँ आधुनिकता बोध ने उपन्यास-शिल्प में काफी परिवर्तन और परिमार्जन किया । उसकी नवीनता अनेक रूपों में लक्षित हुई, उसमें सुक्ष्म संवेदना को स्थान मिला । स्वतंत्रता - प्राप्ति के बाद के उपन्यासकारों में एक

---

१ डॉ. रामदरश मिश्र - हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा - पृ.६५ ।

और शिल्प का तादात्म्य मानव-जीवन के विविध पक्षों में हुआ तो दूसरी ओर उसके अन्त: और बाह्य का सामंजस्य करने का प्रयत्न भी किया गया। शिल्प सम्बन्धि एक और विशेषता उभरकर आयी, वह है वर्णनात्मकता में सूक्ष्म से सूक्ष्मतर धरातलों को पहँचानना।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास को सन १९३९ से अब तक की यात्रा करने के लिए जो ऐतिहासिक पीठिका मिली उसका मूल्यांकन करें तो ये सारे उपन्यास दो वर्गों में बँट जाते है। पहले वर्ग में १९३६ से १९४७ तक के काल में लिखे गएँ उपन्यास और दूसरे वर्ग में स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् अर्थात १९४८ से लिखे जानेवाले उपन्यास, जिन्हें `आज का उपन्यास` नाम से अभिहित किया जाता है। इन दोनों ही वर्गों के उपन्यासों में जो सामान्य प्रवृत्तियाँ मिलती है, उनका संक्षिप्त परिचय दिया जा चुका है। यहाँ देखना यह है कि इन दोनों वर्गों के उपन्यासों में जो अन्तर है उसके पीछे कौन-सी परिस्थितियाँ कार्य करती रही है।

प्रेमचंद के देहावसन काल तक (१९३६) आते आते राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन देशव्यापी सत्य बन चुका था। विदेशी गुलामी को उतार कर फेंकने की लालसा प्रबल हो रही थी। इस राजनैतिक आन्दोलन के नेतृत्व की महत्वपूर्ण कड़ी महात्मा गांधी थे, जिनकी राजनैतिक विचारधारा ने जीवन के समान साहित्य को भी प्रभावित किया था। प्रेमचंद और उनके समकालीन उपन्यासकार गांधीवाद से प्रभावित थे। इस काल में द्वितीय महायुध्द और ४२ की ऐतिहासिक क्रान्ति ने भारतीयों के मनस्थिति पर गहरा प्रभाव पडा था। हिन्दी उपन्यास को द्वितीय महायुध्द ने एक पलायनवादी स्थिति की ओर मोड दिया। उपन्यासकार की जीवन की कटुता एवं भयंकरता के यथार्थ को चित्रित करने के बजाय जीवन से पलायन कर गया। मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति इसी समय उभरी। जैनेन्द्र,अज्ञेय और इलाचंद्र जोशी का नाम इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। प्रगतिशील दृष्टिकोण का तिरस्कार करनेवाले उपन्यासों के युग में अश्क और यशपाल अपने-अपने ढंग से पलायनवादी शक्तियों से जूझाते रहे। आगे चल कर उदयशंकर भट्ट, भगवतीचरण वर्मा, नागार्जुन आदि ने इस परम्परा को विकसित किया।

इस युग के उपन्यास-शिल्प पर पाश्चात्य उपन्यास कला का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। यह उपन्यास स्थूलता की अपेक्षा सूक्ष्मता की ओर अधिक है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में अधिक नाटकीयता है। अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण प्रमुख है और जीवन-दृष्टि के लिए भारतीय समाज और जीवन के यथार्थ से अनुभूति ग्रहण करने का आग्रह है। इन्होंने नवीन तथा पश्चिमी उपन्यास शैलियों जैसे-डायरी - शैली, फ्लैश - बैक, चेतना-प्रवाह पध्दति आदि का प्रयोग भी किया। इन उपन्यासों की भाषा में चित्रात्मकता और अभिव्यक्ति की क्षमता में अधिक वृध्दि हुई।

दूसरे वर्ग यानी १९४७ के बाद के उपन्यासों की संरचना को जिस युग - परिस्थितिने प्रभावित किया वह हिन्दु-मुस्लिम दंगों और गांधीजी की हत्याकी पृष्ठभूमि में विकासित हुई थी। स्वतंत्रता के बाद देश में प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ प्रबल हुई। अंग्रेजी शासन तो बदला किन्तु उनके समय की नौकरशाही और उनकी मनोवृत्ति ज्यों की त्यों बनी रही। स्वतंत्रता संग्राम का सेनानी जननेता न बनकर शासक बन गया था, इसलिए भारतीय जनतंत्र उनके आन्तरिक विषमताओं का शिकार हुआ। चीन के आक्रमण और परराष्ट्रनीति की असफलता ने सारे देश को जिन संकट में डाला था, वे परिस्थितियाँ आज काफी बदल रही है। धीरे - धीरे एक सशक्त राष्ट्रीय गौरव चेतना का दृष्टिकोण और अहसास प्रबल हो रहा है। इन परिस्थितियों में जो नए उपन्यासकारों की पीढी पनप रही है उसका दृष्टिकोण बहुत प्रगतिशील है। उसने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होनेवाले परिवर्तन को पहँचाना और आत्मसात किया है। उसने नए जीवन-मूल्यों, भावस्थितियों और परिवर्तनों को पहँचाना है, वह यथार्थ से कतराता नहीं है, उस सब को भोगता है। इसलिए उसका कोई औपन्यासिक पात्र अपने सुख-दु:ख में अकेला नहीं है। आज का उपन्यास घोर वैयक्तिकता से निकलकर सामाजिकता की ओर बढ रहा है।

स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासमें जो अत्यंत स्वस्थ एवं नवीन रूप प्रस्फुटित होकर आए, उनमें आँचलिक उपन्यास उल्लेखनीय है। इस समय तक आँचलिकता के

ग्रहण के लिए देश की परिस्थितियाँ काफी हद तक तैयार हो चुकी थीं और राष्ट्रीयता के उदार दृष्टिकोण का रूख उन भूखण्डों ,अँचलों या प्रदेशों की ओर मुड गया था जिनमें आदिवासी समाज,जन-जातियाँ या पिछडे हुए वर्ग थे और जो भौगोलिक अंचल अपनी समृध्दि में राष्ट्र की ख्यातिप्राप्त थे। इन भण्डारों की ओर अब नई दृष्टि से देखा जाने लगा था। जो लोकतंत्रीय दृष्टि देश और शासन में स्थापित हुई थी,उसका ध्यान इस ओर जाना स्वाभाविक ही था। यह जनवादी विचारधारा का ही एक रूप था जो यह स्वीकार करती थी कि सबसे अधिक उत्पीडित,उपेक्षित और शोषितों को ही कलाकार की सहानुभूति नहीं चाहिए, भारतीय जन-जीवन का सच्चा-चित्रण करने के लिए उसे निश्चित रूप से सभ्यता से दूर अनदेखे अँचलों और अल्पज्ञात जातियों के बीच पहुँचना होगा, जहाँ " भारतीय संस्कृति मुलत: एक होते हुए भी अपने विशिष्ट रूप में दृष्टव्य है। "[१] परिणाम स्वरुप युग-युग से उपेक्षित,शोषित और जर्जरित जन-जीवन को उसकी भौगोलिक संस्कृति के साथ जानने का सशक्त प्रयत्न हिन्दी उपन्यास में हुआ। डॉ.रांगेय राघव ने " कब तक पुकारूँ " की भूमिका में आँचलिक उपन्यास के लिए उपयुक्त परिस्थितियों का सही जायजा लेते हुए लिखा है -- " प्रेमचंद के समय में राष्ट्रीय आन्दोलन विदेशी के विरुध्द था,अत: उस समय राष्ट्रीयता का ही महत्व उनके उपन्यासों में मिलता है। प्रेमचंद आदर्शवादी भी थे। उनकी समस्या राष्ट्रीय आन्दोलन को बल देने की थी। किन्तु अब युग प्रेमचंद से आगे है और केवल शोषाण का आर्थिक पहलू ही देखना काफी नहीं है -- असली भारत गाँव में है जो अब भी मध्यकालीन विश्वासों से ग्रस्त है। वे विश्वास मध्यकालीन आर्थिक व्यवस्था से नियंत्रित है। मैंने उनको स्पष्ट करने का प्रयास किया है। "[२]

---

१ डॉ.आदर्श सक्सेना - हिन्दी के आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प-विधि - पृ.८२।

२ डॉ.रांगेय राघव - " कब तक पुकारूँ " (भूमिका) - पृ.५।

उपन्यास साहित्य मे यथार्थ के आग्रह ने आँचलिक प्रवृत्ति के विकास को बल दिया। इस दृष्टि के अनुसार नगर और गाँव जितने महत्व पूर्ण हैं उतनी ही आँचलिक जातियाँ और अँचल यथार्थ हैं। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि यथार्थवादी कलाकार इस प्रवृत्ति की ओर उन्मुख होता। भारतीय समाज और जन जीवन का गठन जिस सुव्यवस्थित रूप मे होने लगा था उसने लेखक को लोक-संस्कृति और विभिन्न भू-भागों के जीवन की ओर आकृष्ट किया। किसी अँचल के लोकाचार, परम्परा, जाति-व्यवस्था, खान-पान, बोलचाल आदि आँचलिक तत्वों के सम्मिश्रण से हिन्दी उपन्यास कला एक नई विधा के रूप में विकसित होकर आयी।

कला और शिल्प की दृष्टि से भी यह औपन्यासिक विधा एक ऐतिहासिक आवश्यकता के रूप मे उत्पन्न हुई। जैसे युरोप में आधौगिकरण के बाद `रोमैन्टिसिज्म` और फिर `रीजनलिज्म` आया वैसे ही हिन्दी में उसी के प्रभाव में लगभग उसीप्रकार की परिस्थितियों में यह शिल्पगत प्रयोग हुआ। भाषा और शैली में भी नए से नए विकास-रूप` देखने मे आए। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आँचलिक उपन्यास के विकास की एक सुनियोजित तथा क्रमबध्द परम्परा दिखाई देती है। इस परम्परा मे जिन यशस्वी उपन्यासकारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है उनकी कृतियाँ हिन्दी साहित्य का अक्षय-भण्डार है तथा हिन्दी उपन्यास की समृध्दि के सूचक है।

निष्कर्ष --

इस प्रकार हिन्दी उपन्यास साहित्य में आँचलिक उपन्यासों की प्रदीर्घ परम्परा समीक्षकों द्वारा स्थापित की गई है। किन्तु आँचलिकता की प्रवृत्ति के लक्षणों के अनुसार ये सही अर्थ में आँचलिक उपन्यास नहीं हैं। कई उपन्यासों में केवल एक या दो लक्षण पाएँ जाते है इसलिए वे आँचलिक नहीं बन सकते। कई उपन्यासों में आँचलिकता का आभास मात्र मिलता है। सच्चे एवं आधुनिक अर्थ में आँचलिक उपन्यास कम लिखे गए है और उनमें भी श्रेष्ठ आँचलिक उपन्यासों

की संस्था कम है। उपन्यासों में प्राप्त आँचलिकता की प्रवृत्तियों का उचित मूल्यांकन उसके लक्षणों एवं विशेषताओं के आधार पर ही किया जाना चाहिए।

जन-जीवन की परम्पराओं, रीति-रिवाजों, त्योहारों, एवं प्राकृतिक वातावरण का परिणाम व्यक्ति के जीवन पर अनिवार्य रूप से हुआ करता है। इसीलिए उनका अध्ययन आँचलिक उपन्यासों में आवश्यक हो जाता है। इस 'अँचल' की एक वैशिष्टयपूर्ण सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, नैतिक या आर्थिक मूल्यों से निर्मित समाज व्यवस्था होती है। यही समाज व्यवस्था अनन्तर स्वाभाविक एवं सौन्दर्ययुक्त प्रतीत होती है। आँचलिक उपन्यासकार जन-जीवन की समग्र संस्कृति के चित्रण द्वारा इसी सजीवता एवं सुन्दरता का उद्‌घाटन करते है। विकसनशील राष्ट्र की यांत्रिक एवं औद्योगिक समाज व्यवस्था में विशुध्द मानवीय भाव-सौन्दर्य की उत्कट अनुभूति आँचलिक उपन्यासों का एक महत्वपूर्ण योगदान है।